सीता

मैं हूँ सीता, सत् की जननी
सत् की पालनहारिणी।
बेटा, पति, पिता या नाती,
सबकी मंगलहारिणी।
फिर भी समझी जाती हूँ मैं
केवल चरण-विहारिणी।
पितृ मेरा या भ्रातृ मेरा हो ,
पुलिस, पुरोहित, छात्र मेरा हो,
अफसर, मुल्लात और पुजारी,
सबके लिए भक्ष्यर है नारी।
वक्त -बेवक्तह सबके सब ये,
मेरा रक्तभ चूसते हैं ये।
लेना चाहते हैं निकाल ये
वह स्वार्ग का सुख मुझमें से,
जिसके भोग की भूख ललकती
इनको सुख व दुख में से!
मेरे लिए नियम है 'सीता'
फिर भी मैं तो रही क्रीता,
किसी चीज के क्रय की भाँति,
जिसने चाहा, मुझे खरीदा!
कैसे कहूँ है कोई रक्षक?
तोड़ो माँ, बेटी का मिथक।
कहो स्वायं को पुरुष मात्र ही
और मुझे तो गात्र मात्र ही,
ताकि मैं भी, तुम भी समझो –
'इस सीता के शीलहरण से,
शीलहरण न हुआ किसी का,
मुझे भ्रम न रहे यह कि
कोई मेरा भाई भी था!'

डॉ. रचनासिंह 'रश्मि'

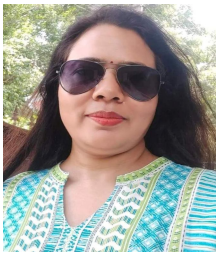

साहित्यकार, सोशल एक्टिविस्ट
पर्यावरणविद

मजदूर हूं

मैं मजदूर हूं
रंजो गम से
भरपूर हूं
फटे चीथड़ो में
गांव मिट्टी घर से दूर
दो वक्त की रोटी को
मजबूर हूं
घर ना ठिकाना
खुले आसमां के नीचे
सोने को मजबूर हूं
करके मेहनत
थककर चूर हूं
तपती धूप में
पसीने से भरपूर हूं
वोटों की गिनती में
जरूर हूं
सरकारी सुविधाओं
से दूर हूं
मैं हर जगह मजूद हूं
सबसे करिब फिर भी
सबसे दूर हूं
क़िस्मत से मजबूर
भारत की तकदीर हूं
उनके हिस्से सुख
मेरे हिस्से में दुख
मैं इतना क्यों!
मजबूर हूं
क्योंकि! मैं मेहनतकश
मजदूर हूं